॥ श्रीहरिः ॥ 371 ▲

श्रीराधा-माधव-रस-सुधा

(षोडशगीत)

[हिन्दी (खड़ी बोली) अनुवादसहित]



हनुमानप्रसाद पोद्दार



371

॥ श्रीराधा-माधव-चरन बंदौ बारंबार ॥

श्रीराधा-माधव-रस-सुधा

(षोडशगीत)

[हिंदी (खड़ी बोली) अनुवादसहित]



गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक—गोबिन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०२१ से २०५३ तक	१,११,०००
सं० २०५८ बारहवाँ संस्करण	५,०००
योग	१,१६,०००

मूल्य—तीन रुपये



मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

फोन : (०५५१) ३३४७२१; फैक्स ३३६९९७

visit us at: www.gitapress.org | e-mail: gitapres@ndf.vsnl.net.in

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

नम्र निवेदन

सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णका आनन्दस्वरूप या ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधाके रूपमें प्रकट है। श्रीराधाजी स्वरूपतः भगवान् श्रीकृष्णके विशुद्धतम प्रेमकी ही अद्वितीय घनीभूत नित्य स्थिति हैं। ह्लादिनीका सार प्रेम है, प्रेमका सार मादनाख्य महाभाव है और श्रीराधाजी मूर्तिमती मादनाख्य महाभावरूपा हैं। वे प्रत्यक्ष साक्षात् ह्लादिनी शक्ति हैं, पवित्रतम नित्य वर्द्धनशील प्रेमकी आत्मस्वरूपा अधिष्ठात्री देवी हैं। कामगन्धहीन स्वसुख-वाञ्छा-वासना-कल्पना-गन्धसे सर्वथा रहित श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी श्रीकृष्णसुखजीवना श्रीराधाका एकमात्र कार्य है—त्यागमयी पवित्रतम नित्य सेवाके द्वारा श्रीकृष्णका आनन्दविधान। श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद तथा अभेद दोनों ही नित्य वर्तमान हैं। अभेदरूपमें तत्त्वतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं और प्रेमानन्दमयी दिव्यलीलाके रसास्वादनार्थ अनादिकालसे ही नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधाका मादनाख्य महाभावरूप प्रेम अत्यन्त गौरवमय होनेपर भी मदीयतामय मधुर स्नेहसे आविर्भूत होनेके कारण सर्वथा ऐश्वर्य-गन्ध-शून्य है। वह न तो अपनेमें गौरवकी कल्पना करता है, न गौरवकी कामना ही। सर्वोपरि होनेपर भी वह अहंकारादिदोष-लेश-शून्य है। यह मादनाख्य महाभाव ही राधा-प्रेमका एक विशिष्ट रूप है। राधाजी इसी भावसे आश्रयनिष्ठ प्रेमके द्वारा प्रियतम श्रीकृष्णकी सेवा करती हैं। उन्हें उसमें जो महान् सुख मिलता है, वह सुख श्रीकृष्ण 'विषय' रूपसे राधाके द्वारा सेवा प्राप्त करके जिस प्रेमसुखका अनुभव करते हैं, उससे अनन्तगुना अधिक है। अतएव श्रीकृष्ण चाहते हैं कि मैं प्रेमका

'विषय' न होकर 'आश्रय' बनूँ, अर्थात् मैं सेवाके द्वारा प्रेम प्राप्त करनेवाला 'विषय' ही न बनकर सेवा करके प्रेमदान करनेवाला भी बनूँ। मैं आराध्य ही न बनकर, आराधक भी बनूँ। इसीसे श्रीकृष्ण नित्य राधाके आराध्य होनेपर भी स्वयं उनके आराधक बन जाते हैं। जहाँ श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, वहाँ श्रीराधा उनकी प्रेमास्पदा हैं और जहाँ श्रीराधा प्रेमिकाके भावसे आविष्ट हैं, वहाँ श्रीकृष्ण प्रेमास्पद हैं। दोनों ही अपनेमें प्रेमका अभाव देखते हैं और अपनेको अत्यन्त दीन और दूसरेका ऋणी अनुभव करते हैं; क्योंकि विशुद्ध प्रेमका यही स्वभाव है।

रस-साहित्यमें अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही उपलब्ध होती हैं, जिनमें श्रीकृष्ण प्रेमास्पदके रूपमें और श्रीराधा प्रेमिकाके रूपमें चित्रित की गयी हैं। इन सोलह गीतोंमें आठ पद ऐसे हैं, जिनमें श्रीकृष्ण श्रीराधाको अपनी प्रेमास्पदा मानकर उन्हें प्रेमकी स्वामिनी और अपनेको प्रेमका कंगाल स्वीकार करते हैं और उनके उत्तररूपमें आठ पद श्रीराधाके द्वारा कहे गये हैं, जिनमें श्रीराधा अपनेको अत्यन्त दीना और श्रीकृष्णको प्रेमके धनीरूपमें स्वीकार करती हैं। इस प्रकार इन सोलह पदोंमें प्रेमिगत दैन्य और प्रेमास्पदकी महत्ताका उत्तरोत्तर विकास दृष्टिगत होता है।

पाठक विशेष गहराईमें जाकर इन पदोंके भावोंको ग्रहण करनेका प्रयास करेंगे तो उन्हें पता लगेगा कि श्रीराधाकृष्णके प्रेमका स्वरूप कितना पवित्रतम, समर्पणपूर्ण तथा दिव्य है। इसी प्रेमको आदर्श मानकर प्रेममार्गके साधक अपना मार्ग निश्चय करें और श्रीराधा-माधवके चरणोंमें प्रेम प्राप्त करें, इसी हेतु इन पदोंका प्रकाशन किया गया है।



श्रीराधा

'श्रीराधा-माधव-रस-सुधा'के षोडशगीतोंके अध्ययन, मनन एवं नित्यपाठके प्रति परम विशुद्ध, पूर्ण त्यागमय, समर्पणमय तथा निःस्वार्थ भगवत्प्रेमके इच्छुक भक्त, विद्वान् तथा सभी आश्रमोंके नर-नारी बहुत रुचि दिखला रहे हैं। विदेशके अनेकों विद्वानोंने इन गीतोंके भावोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। भावसम्पन्न हृदयसे इन गीतोंका प्रतिदिन नियमित पाठ करनेसे अनेकों प्रेमी साधकोंको विशेष लाभ हुआ है। अनेक स्थानोंपर भावुक भक्त इन गीतोंका रात्रिमें २ बजेसे ४॥ बजेतक गान करते हैं तथा स्थान-स्थानपर सहस्त्रों व्यक्ति अपनी सुविधासे इन गीतोंका नियमित पाठ करते हैं। समयकी सुविधासे पाठ करनेवाले व्यक्तियोंने तीन पद्धतियाँ अपना रखी हैं—

(१) आरम्भकी वन्दना एवं उपसंहारकी पुष्पिकाके सहित प्रतिदिन पूरे १६ गीतोंका एक या एकसे अधिक पाठ।

(२) आरम्भकी वन्दना एवं उपसंहारकी पुष्पिकासहित श्रीकृष्णके प्रेमोद्गारका एक गीत और श्रीराधाके प्रेमोद्गारका एक गीत प्रतिदिन पाठ करना। इस प्रकार ८ दिनोंमें सोलहों गीतोंका एक पूरा पाठ।

(३) प्रतिदिन एक गीतका पाठ करना। इस प्रकार वन्दना और पुष्पिकासहित सोलह गीतोंका १८ दिनोंमें पूरा एक पाठ।

जिनकी रुचि हो, वे इनमेंसे किसी पद्धतिके अनुसार पाठ कर सकते हैं।

~~~
~~~



श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीराधा-माधव-रस-सुधा

[षोडशगीत]

महाभाव-रसराज-वन्दना

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥ १॥

आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥ २॥

लीला-आस्वादन-निरत महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥ ३॥

सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥ ४॥

श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरैं, नित-रस-पारावार॥ ५॥

~~~
~~~

श्रीराधा-माधव दोनों एक-दूसरेके लिये चकोर भी हैं और चन्द्रमा भी, भ्रमर भी हैं और कमल भी, पपीहा भी हैं और मेघ भी एवं मछली भी हैं और जल भी॥ १॥

प्रिया-प्रियतम एक-दूसरेके प्रेमी भी हैं और प्रेमास्पद भी। प्रेमीको कहते हैं—'आश्रयालम्बन' और प्रेमास्पदको 'विषयालम्बन'। कहीं श्यामसुन्दर प्रेमी बनते हैं तो राधाकिशोरी प्रेमास्पद हो जाती हैं और जहाँ राधाकिशोरी प्रेमिकाका बाना धारण करती हैं वहाँ श्यामसुन्दर प्रेमास्पद हो जाते हैं। प्रेमका स्वरूप ही है प्रेमास्पदके सुखमें सुख मानना। इसीसे प्रेमीको 'तत्सुख-सुखिया' कहते हैं। श्रीराधाकिशोरी और उनके प्राण-प्रियतम श्रीकृष्ण दोनों ही तत्सुख-सुखी हैं। श्रीराधाको सुखी देखकर श्यामसुन्दरको सुख होता है और श्यामसुन्दरको सुखी देखकर श्रीराधा सुखी होती हैं॥ २॥

प्रेमकी अन्तिम परिणतिका नाम है 'महाभाव'। महाभावके मूर्तिमान् विग्रह हैं श्रीराधा। इसी प्रकार रसोंमें सर्वश्रेष्ठ रस है उज्ज्वल अथवा शृङ्गाररस। इसके मूर्तिमान् स्वरूप हैं श्रीकृष्ण। इस प्रकार श्रीराधा और श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् महाभाव-रसराज ही परस्पर लीलारसका आस्वादन करते रहते हैं और नाना प्रकारके नित्य नूतन साज—वेश सजकर एक-दूसरेको रसका वितरण किया करते हैं॥ ३॥

प्रिया-प्रियतम दोनों ही एक ही कालमें परस्परविरोधी, अनन्त, नित्य, मन-वाणीके अगोचर (वाणीसे जिनका वर्णन नहीं हो सकता और चित्तसे जिनका चिन्तन नहीं हो सकता), अत्यन्त शोभामय एवं दिव्य ऐश्वर्ययुक्त गुणोंसे विभूषित रहते हैं॥ ४॥

ये तत्त्वतः—स्वरूपतः एक होते हुए दो भिन्न स्वरूपोंको धारण किये हुए हैं। नित्य रसके समुद्र उन श्रीराधा-माधवके चरणोंकी मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ॥ ५॥

(१)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग मालकोस—तीन ताल)

राधिके! तुम मम जीवन-मूल।
अनुपम अमर प्रान-संजीवनि, नहिं कहुँ कोउ समतूल॥ १॥

जस सरीरमें निज-निज थानहिं सबही सोभित अंग।
किंतु प्रान बिनु सबहि ब्यर्थ, नहिं रहत कतहुँ कोउ रंग॥ २॥

तस तुम प्रिये ! सबनिके सुखकी एक मात्र आधार।
तुम्हरे बिना नहीं जीवन रस, जासौं सब कौ प्यार॥ ३॥

तुम्हरे प्राननि सौं अनुप्रानित, तुम्हरे मन मनवान।
तुम्हरौ प्रेम-सिंधु-सीकर लै करौं सबहि रसदान॥ ४॥

तुम्हरे रस-भंडार पुन्य तैं पावत भिच्छुक चून।
तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन॥ ५॥

सोऊ अति मरजादा, अति संभ्रम-भय-दैन्य-सँकोच।
नहिं कोउ कतहुँ कबहुँ तुम-सी रसस्वामिनि निस्संकोच॥ ६॥

तुम्हरौ स्वत्व अनंत नित्य, सब भाँति पूर्न अधिकार।
कायब्यूह निज रस-बितरन करवावति परम उदार॥ ७॥

तुम्हरी मधुर रहस्यमई मोहनि माया सौं नित्य।
दच्छिन बाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त॥ ८॥

~~~
~~~

(१)

हे प्यारी राधिके! तुम मेरे जीवनकी मूल हो, मेरे प्राणोंकी अनुपम, अमर सञ्जीवनी हो। तुम्हारे समान दूसरी कोई कहीं नहीं है॥ १॥

जैसे शरीरमें अपनी-अपनी जगह सभी अङ्ग शोभा देते हैं, परंतु प्राणोंके बिना सभी व्यर्थ हैं, किसीमें कहीं कोई शोभा नहीं रह जाती, उसी प्रकार हे प्यारी! सबकेसुखकी एकमात्र आधार तुम ही हो। तुम्हारे बिना जीवनमें कोई रस नहीं रह जाता, जिस (जीवन) को सब कोई प्यार करते हैं॥ २-३॥

मेरे प्राण तुम्हारे प्राणोंसे ही संचालित रहते हैं, तुम्हारे मनसे ही मैं मनवान् बना हूँ—तुम्हारे मनसे ही मेरे मनकी सत्ता है। तुम्हारे प्रेमरूपी समुद्रकी एक बूँदको ही लेकर मैं सबको रसदान करता हूँ॥ ४॥

तुम्हारे पुण्यमय—पवित्र रस-भण्डारसे ही सभी भिक्षुक चून—रस-कण प्राप्त करते हैं, सबको रस वहींसे मिलता है। तुम्हारे समान तो एकमात्र तुम्हीं हो, इसमें तुम तनिक भी कसर मत समझो॥ ५॥

इस प्रकार मैं तुम्हारे ही रस-भण्डारमेंसे रस-दान करता हूँ, परंतु उसमें बड़ी ही मर्यादा, बड़ा संयम, भय, दीनता और संकोच बना रहता है (मुक्तहस्तसे—उदारतापूर्वक नहीं कर सकता)। तुम-जैसी संकोच छोड़कर रस बाँटनेवाली उदार रसकी स्वामिनी तो एक तुम ही हो, दूसरी कोई कहीं, कभी नहीं है॥ ६॥

फिर मुझपर तो तुम्हारा नित्य अनन्त स्वत्व है—कभी नहीं हटनेवाला हक है (मैं तो सदा तुम्हारी ही सम्पत्ति हूँ)। अतएव मुझपर सभी प्रकारसे तुम्हारा पूरा अधिकार है। (इसीसे मुझको निमित्त बनाकर) तुम अपनी कायव्यूहरूपा—अङ्गस्वरूपा गोपीजनोंके द्वारा परम उदार होकर खुले हाथों रसका वितरण करवाती हो—रस बँटवाती रहती हो॥ ७॥

मैं तो यही चाहता हूँ कि तुम्हारी रहस्यमयी, मेरे जीवनको सदा मुग्ध रखनेवाली मीठी मायाके—रसमयी प्रीतिके वशीभूत रहकर मैं तुम्हारे दक्षिण और वाम दोनों प्रकारके भावोंके रसास्वादनमें निमित्त बनता रहूँ॥ ८॥



(२)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णाके प्रति

(राग रागेश्वरी—ताल दादरा)

हौं तो दासी नित्य तिहारी।
प्राननाथ जीवन-धन मेरे, हौं तुम पै बलिहारी॥ १॥

चाहें तुम अति प्रेम करौ, तन-मन सौं मोहि अपनाऔ।
चाहें द्रोह करौ, त्रासौ, दुख देइ मोहि छिटकाऔ॥ २॥

तुम्हरौ सुख ही है मेरौ सुख, आन न कछु सुख जानौं।
जो तुम सुखी होउ मो दुखमें, अनुपम सुख हौं मानौं॥ ३॥

सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरे।
तुमहि सुखी नित देखन चाहौं निसि-दिन साँझ-सबेरे॥ ४॥

तुमहि सुखी देखन हित हौं निज तन-मन कौं सुख देऊँ।
तुमहि समरपन करि अपने कौं नित तव रुचि कौं सेऊँ॥ ५॥

तुम मोहि 'प्रानेस्वरि', 'हृदयेस्वरि', 'कांता', कहि सचु पावौ।
यातैं हौं स्वीकार करौं सब, जद्यपि मन सकुचावौ॥ ६॥

~~~
~~~

(२)

प्राणनाथ! मैं तो तुम्हारी नित्य दासी—सदाकी चेरी हूँ। तुम मेरे प्राणोंके स्वामी तथा जीवन-सर्वस्व हो, मैं तुमपर बलिहारी हूँ—न्योछावर हूँ॥ १॥

चाहे तुम मुझसे अत्यन्त प्रेम करो, शरीर और मनसे मुझको अङ्गीकार करो अथवा द्रोह करो, त्रासो, दुःख देकर मुझको छोड़-छिटका दो॥ २॥

तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है, दूसरा कोई सुख मैं रञ्चमात्र भी नहीं जानती। यदि तुम मेरे दुःखमें सुखका अनुभव करो तो (तुमको सुखी देखकर) उस दुःखमें मैं ऐसे महान् सुखका अनुभव करूँ, जिसकी कहीं उपमा नहीं॥ ३॥

मैं जो सुख बिलसती हूँ, वह भी तुम्हारे सुखके कारण ही; मेरे मनमें दूसरे सुखकी कल्पना ही नहीं। मैं तुमको नित्य—संध्यासे सबेरेतक और सबेरेसे संध्यातक—रात-दिन सुखी देखना चाहती हूँ॥ ४॥

तुमको सुखी देखनेके लिये ही मैं अपने शरीर और मनको सुखी रखती हूँ—मुझे सुखी देखकर तुमको सुख होता है, इसी कारण मैं शरीर और मनसे सुखी रहती हूँ। अपने-आपको तुम्हें अर्पण करके मैं सदा तुम्हारी रुचिका ही सेवन करती हूँ॥ ५॥

तुम मुझको 'प्राणेश्वरी', 'हृदयकी स्वामिनी', 'कान्ता' (प्यारी) कहकर सुख प्राप्त करते हो, इसीसे मैं इन सब सम्बोधनोंको स्वीकार कर लेती हूँ, ग्रहण कर लेती हूँ, यद्यपि इन शब्दोंको सुनकर मुझको मनमें बहुत संकोच होता है—संकोचके मारे मैं गड़ जाती हूँ॥ ६॥



(३)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

हे आराध्या राधा! मेरे मनका तुझमें नित्य निवास।
तेरे ही दर्शन कारण मैं करता हूँ गोकुलमें वास॥ १॥

तेरा ही रस-तत्त्व जानना, करना उसका आस्वादन।
इसी हेतु दिन-रात घूमता मैं करता वंशीवादन॥ २॥

इसी हेतु स्नानको जाता, बैठा रहता यमुना-तीर।
तेरी रूपमाधुरीके दर्शनहित रहता चित्त अधीर॥ ३॥

इसी हेतु रहता कदम्बतल, करता तेरा ही नित ध्यान।
सदा तरसता चातककी ज्यौं, रूप-स्वातिका करने पान॥ ४॥

तेरी रूप-शील-गुण-माधुरि मधुर नित्य लेती चित चोर।
प्रेमगान करता नित तेरा, रहता उसमें सदा विभोर॥ ५॥



(३)

हे आराध्या राधे! मेरा मन सदा—दिन-रात तुझीमें बसा रहता है। मुझको तेरा दर्शन मिलता रहे, इसी लोभसे मैं गोकुलमें बस रहा हूँ॥ १॥

तेरे ही रसके तत्त्वको जानने और उसका आस्वादन करनेके लिये मैं बाँसुरी बजाता रात-दिन इधर-उधर घूमता फिरता हूँ॥ २॥

इसीके लिये मैं स्नान करनेको यमुनापर जाया करता हूँ और उसके तटपर बैठा रहता हूँ। तेरी रूपमाधुरीका दर्शन करनेके लिये मेरा चित्त अधीर—उतावला रहता है॥ ३॥

इसी कारण मैं कदम्बके नीचे अवस्थित रहता हूँ और नित्य तेरा ही ध्यान—तेरा ही चिन्तन करता रहता हूँ। तेरी रूपछटारूप स्वातिके जलका पान करनेके लिये मैं पपीहेकी भाँति सदा तरसता रहता हूँ—लालायित रहता हूँ॥ ४॥

तेरे रूप, शील-स्वभाव तथा गुणोंकी मोहक मधुरता बरबस मेरे चित्तको चुरा लेती है। इसीसे मैं नित्य तेरे प्रेमके गीत गाता हुआ सदा उसीमें तन्मय रहता हूँ॥ ५॥



(४)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार !
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार ॥ १ ॥

पद-पङ्कज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल !
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं, कनकलता ज्यों तरुण तमाल ॥ २ ॥

दासी मैं हो चुकी सदाको, अर्पणकर चरणोंमें प्राण।
प्रेम-दामसे बँध चरणोंमें, प्राण हो गये धन्य महान ॥ ३ ॥

देख लिया, त्रिभुवनमें बिना तुम्हारे और कौन मेरा।
कौन पूछता है 'राधा' कह, किसको राधाने हेरा ॥ ४ ॥

इस कुल, उस कुल—दोनों कुल, गोकुलमें मेरा अपना कौन ?
अरुण मृदुल पद-कमलोंकी ले शरण अनन्य, गयी हो मौन ॥ ५ ॥

देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन।
तुम ही प्राणनाथ नित मेरे, किसे सुनाऊँ मनके बैन ॥ ६ ॥

रूप-शील-गुणहीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम।
चरणधूलि मैं चरणोंमें ही लगी रहूँगी, बस, हरदम ॥ ७ ॥

~~~
~~~

(४)

मेरी इस विनीत प्रार्थनाको, हे व्रजराजकुमार! तुम ध्यान देकर सुन लो। युग-युगान्तरमें, जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरे जीवनके आधार बने रहो—यही मैं चाहती हूँ॥ १॥

तुम्हारे चरण-कमलोंके परागकी, हे नन्दलाल! मैं नित्य भ्रमरी बनी रहूँ—उन चरणोंपर मँडराती डोलूँ। इतना ही नहीं, जैसे कोई सोनेकी बेल नवीन तमालके वृक्षसे सदा लिपटी रहे, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे सटी रहूँ॥ २॥

तुम्हारे चरणोंपर अपने प्राणोंको न्योछावर करके मैं सदाके लिये तुम्हारी चेरी बन चुकी हूँ। प्रेमकी डोरीसे तुम्हारे चरणोंमें बँधकर मेरे ये प्राण अत्यन्त धन्य हो चुके हैं॥ ३॥

मैंने परीक्षण करके देख लिया, त्रिलोकीमें तुमको छोड़कर मेरा और कौन है (कोई नहीं है)। 'राधा' नाम लेकर दूसरा कौन मुझको टेरता है और मुझ राधाकी भी दृष्टि और किसकी ओर गयी है?॥ ४॥

मेरे नैहरमें और ससुरालमें—दोनों परिवारोंमें, इस गोकुल (व्रज) में मेरा सगा कौन है—कोई नहीं। एकमात्र तुम्हारे लाल-लाल सुकुमार चरण-कमलोंका आश्रय लेकर मैं मौन हो गयी हूँ॥ ५॥

तुमको देखे बिना मुझको एक पल भी चैन—शान्ति नहीं मिलती। सदाके लिये तुम्हीं मेरे प्राणोंके स्वामी हो, तुमको छोड़कर और किसको अपने मनकी बात सुनाऊँ?॥ ६॥

रूप, शील-स्वभाव तथा गुणोंसे हीन समझकर तुम मुझको कितना ही दुतकारो, मैं तो तुम्हारे चरणोंकी रज हूँ और प्रतिक्षण चरणोंमें ही चिपटी रहूँगी—बस, इतनी बात जानती हूँ॥ ७॥

~~~
~~~

(५)

श्रीकृष्णाके प्रेमोद्‌गार—श्रीराधाके प्रति

(राग परज—तीन ताल)

हे बृषभानुराजनन्दिनि ! हे अतुल प्रेम-रस-सुधा-निधान !
गाय चराता वन-वन भटकूँ, क्या समझूँ मैं प्रेम-विधान॥ १॥

ग्वाल-बालकोंके सँग डोलूँ, खेलूँ सदा गँवारू खेल।
प्रेम-सुधा-सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलका कैसा मेल ?॥ २॥

तुम स्वामिनि अनुरागिणि ! जब देती हो प्रेमभरे दर्शन।
तब अति सुख पाता मैं, मुझपर बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण॥ ३॥

कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, नित्य प्रेम-धनका कंगाल।
तुम्हीं दयाकर प्रेमदान दे, मुझको करती रहो निहाल॥४॥



(५)

हे वृषभानु राजाकी बेटी! हे प्रेम-रस-सुधाकी अनुपम निधि! मैं तो गायोंको चराता वन-वनमें भटकता रहता हूँ; मैं भला, प्रेमकी रीति-नीति—प्रेम कैसे किया जाता है, यह क्या जानूँ!॥ १ ॥

मैं तो ग्वाल-बालोंके साथ घूमता रहता हूँ तथा सदा गँवारू खेल खेलता रहता हूँ। तुम तो प्रेमरूपी अमृतकी सरिता हो और मैं तपी हुई वालुका हूँ; मेरा तुम्हारे साथ कैसा मेल?॥ २ ॥

अनुरागभरी स्वामिनि! जब भी तुम मुझको प्रेमभरा दर्शन देती हो, तब मुझको अपार सुखका अनुभव होता है और मुझपर तुम्हारा ऋण असीम रूपसे बढ़ जाता है॥ ३ ॥

मैं तो सदा ही प्रेम-धनका कंगाल हूँ, तब मैं तुम्हारे इस अत्यन्त बढ़े हुए ऋणको कैसे चुका सकता हूँ? तुम दयाकी खानि हो; तुम्हीं प्रेमका दान देकर मुझको निहाल—कृतार्थ करती रहो, यही मेरी विनती है॥ ४ ॥



(६)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग परज—तीन ताल)

सुन्दर श्याम कमल-दल-लोचन, दुखमोचन व्रजराजकिशोर !
देखूँ तुम्हें निरन्तर हिय-मन्दिरमें, हे मेरे चितचोर!॥१॥

लोक-मान-कुल-मर्यादाके शैल सभी कर चकनाचूर।
रक्खूँ तुम्हें समीप सदा मैं, करूँ न पलक तनिक भर दूर॥२॥

पर मै अति गँवार ग्वालिनि, गुणरहित, कलंकी, सदा कुरूप।
तुम नागर, गुण-आगर, अतिशय कुलभूषण, सौन्दर्य-स्वरूप॥३॥

मैं रस-ज्ञान-रहित्त, रसवर्जित, तुम रसनिपुण, रसिक-सिरताज।
इतनेपर भी, दयासिन्धु तुम मेरे उरमें रहे विराज॥४॥

~~~
~~~

(६)

हे कमल-जैसे नेत्रोंवाले श्यामसुन्दर! हे दुःखसे छुड़ानेवाले व्रजराज-किशोर! हे मेरे चित्तचोर! मैं तुमको अपने हृदयरूप भवनमें निरन्तर—बिना बाधा निहारती रहूँ॥ १॥

मेरा मन चाहता है कि लोक-लाज, मान-प्रतिष्ठा तथा कुलकी मर्यादारूपी समस्त पर्वतोंको चकनाचूर करके मैं तुमको सदा ही अपने समीप बनाये रखूँ, एक पलक भी और तनिक भी दूर नहीं रहने दूँ॥ २॥

परंतु मैं तो निरी गँवार ग्वालिनी हूँ, गुणोंसे रीती, कलङ्किनी और सदा ही कुरूपा हूँ। इसके विपरीत तुम अत्यन्त चतुर, अनन्त गुणोंके भण्डार, कुलके महान् भूषण तथा सुन्दरताके स्वरूप ही हो॥ ३॥

कहाँ मैं रसके ज्ञानसे सर्वथा शून्य, रसहीन और कहाँ तुम रसके मर्मज्ञ तथा रसिकोंके सिरमौर हो। इतनेपर भी तुम दयाके सागर [मुझपर दया करके ही] मेरे हृदयमें सदा विराजित रहते हो॥ ४॥



(७)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम, अकथ, अनन्त।
युग-युगसे गाता मैं अविरत, नहीं कहीं भी पाता अन्त॥ १॥

सुधानन्द बरसाता हियमें तेरा मधुर वचन अनमोल।
बिका सदाके लिये मधुर दृग-कमल, कुटिल भ्रुकुटीके मोल॥ २॥

जपता तेरा नाम मधुर अनुपम, मुरलीमें नित्य ललाम।
नित अतृप्त नयनोंसे तेरा रूप देखता अति अभिराम॥ ३॥

कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मनकी आश।
एक तुझीको पाया मैंने जिसने किया पूर्ण अभिलाष॥ ४॥

नित्य तृप्त निष्काम नित्यमें मधुर अतृप्ति, मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेमका है यह जादूभरा मधुर परिणाम॥ ५॥

~~~
~~~

(७)

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा उपमारहित, अवर्णनीय और अनन्त है। मैं युग-युगान्तरसे बिना विराम लिये उसका गान करता आ रहा हूँ, तब भी उसका कहीं अन्त—ओर-छोर नहीं मिलता॥ १॥

तेरे मधुर अनमोल बोल मेरे हृदयमें आनन्दामृत बरसाया करते हैं। तेरे मधुर कमल-से नेत्र तथा बाँकी भौंहोंके मोल मैं सदाके लिये बिक चुका हूँ॥ २॥

अपनी मुरलीमें मैं तेरे उपमा-रहित मधुर एवं श्रेष्ठ नामकी रात-दिन रट लगाया करता हूँ और अतृप्त नेत्रोंसे तेरे अत्यन्त मनोहर रूपको नित्य निहारता रहता हूँ॥ ३॥

तेरे-जैसा निर्मल पवित्र प्रेम मुझको कहीं नहीं मिला, कहीं भी मेरे मनकी आशा पूर्ण नहीं हुई। एकमात्र तू ही मुझको ऐसी मिली है, जिसने मेरी अभिलाषा पूरी की है॥ ४॥

मैं (अपने ही आनन्दसे) नित्य तृप्त रहनेवाला और सदा निष्काम—कामनाहीन हूँ। ऐसे मुझमें मधुर अपरिमित अतृप्ति और अत्यन्त मधुर अपरिमित कामना जगा देना—यह तेरे अलौकिक प्रेमका ही जादूभरा मधुर फल है॥ ५॥



(८)

श्रीराधाके प्रेमोद्‌गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

सदा सोचती रहती हूँ मैं, क्या दूँ तुमको, जीवनधन !
जो धन देना तुम्हें चाहती, तुम ही हो वह मेरा धन॥ १॥

तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम ! सदा तुम्हारी मैं।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल-पल हूँ बलिहारी मैं॥ २॥

प्यारे! तुम्हें सुनाऊँ कैसे अपने मनकी सहित विवेक।
अन्योंके अनेक, पर मेरे तो तुम ही हो, प्रियतम ! एक॥ ३॥

मेरे सभी साधनोंकी, बस एकमात्र हो तुम ही सिद्धि।
तुम ही प्राणनाथ हो, बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि॥ ४॥

तन-धन-जनका बन्धन टूटा, छूटा भोग-मोक्षका रोग।
धन्य हुई मैं, प्रियतम! पाकर एक तुम्हारा प्रिय संयोग॥ ५॥

~~~
~~~

(८)

मेरे जीवनधन! मैं सदा सोचती रहती हूँ कि तुमको क्या दूँ। जो धन मैं तुमको देना चाहती हूँ, मेरा वह धन तो तुम ही हो॥ १॥

तुम्हीं मुझको प्राणोंसे प्यारे हो और हे प्रियतम! मैं सदा तुम्हारी हूँ। तुम्हारी ही वस्तु तुमको देती हुई मैं पल-पल तुमपर बलिहारी—न्योछावर हूँ॥ २॥

हे प्यारे! मैं अपने मनकी बात विवेकपूर्वक—होश-हवासमें तुमसे कैसे कहूँ? औरोंके तो अनेक हैं, परंतु मेरे तो हे प्रियतम! तुम एक ही हो॥ ३॥

अधिक क्या कहूँ, मेरे सम्पूर्ण साधनोंकी सिद्धि—सफलता एकमात्र तुम्हीं हो। तुम ही मेरे प्राणनाथ हो और तुम्हीं मेरा नित्य ऐश्वर्य—स्थिर सम्पत्ति हो, केवल इतनी बात मैं जानती हूँ॥ ४॥

देह, धन और परिवारका बन्धन टूट गया; भोग और मोक्षका रोग भी मिट गया। एक तुम्हारा प्यारा संयोग—मिलन पाकर हे प्रियतम! मैं धन्य-धन्य हो गयी॥ ५॥



(९)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

राधे ! हे प्रियतमे ! प्राण-प्रतिमे ! हे मेरी जीवन-मूल!
पल भर भी न कभी रह सकता, प्रिये ! मधुर मैं तुमको भूल॥ १॥

श्वास-श्वासमें तेरी स्मृतिका नित्य पवित्र स्त्रोत बहता।
रोम-रोम अति पुलकित तेरा आलिङ्गन करता रहता॥ २॥

नेत्र देखते तुझे नित्य ही, सुनते शब्द मधुर यह कान।
नासा अङ्ग-सुगन्ध सूँघती, रसना अधर-सुधा-रस-पान॥ ३॥

अङ्ग-अङ्ग शुचि पाते नित ही तेरा प्यारा अङ्ग-स्पर्श।
नित्य नवीन प्रेम-रस बढ़ता, नित्य नवीन हृदयमें हर्ष॥४॥

~~~
~~~

(९)

राधे! हे प्रियतमे! हे मेरे प्राणोंकी पुतली! हे मेरी जीवन-मूल! हे प्रिये! मधुरातिमधुर तुमको बिसराकर मैं किसी क्षण पलमात्र भी नहीं रह सकता हूँ॥ १॥

श्वास-श्वासमें तेरी यादका पवित्र झरना बहा करता है। मेरा रोम-रोम अत्यन्त पुलकित होकर नित्य-निरन्तर तेरा आलिङ्गन करता रहता है॥ २॥

मेरे नेत्र नित्य तुझको ही निरखते रहते हैं और ये कान तेरा ही मधुर-मनोहर बोल सुनते रहते हैं। मेरी नासिका तेरे ही अङ्गोंसे निकलनेवाली परम मनोहर सुगन्धको सूँघती रहती है और रसना तेरे ही अधरोंके सुधामय रसका पान करती रहती है॥ ३॥

मेरा एक-एक अङ्ग—अवयव तेरे प्यारे अङ्गोंका स्पर्श पाकर नित्य पवित्र होता रहता है। तेरे प्रेमका रस नित्य नया बढ़ता रहता है और उसीके साथ-साथ मेरे हृदयमें हर्ष भी नित्य नया बढ़ता रहता है॥ ४॥



(१०)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुम ही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुख सदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म॥ १॥
तुम्हीं एक, बस, आवश्यकता; तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल, सभी विधि, हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति॥ २॥

तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान*॥ ३॥

सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान।
बाह्याभ्यन्तर नित्य निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान॥ ४॥

कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग।
घुले-मिले रहते करवाते-करते निर्मल रस-सम्भोग॥ ५॥

पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न।
हुए सभी संकल्प भङ्ग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न॥ ६॥

भोक्ता, भोग्य—सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग।
मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग॥ ७॥



---

* (दूसरा पाठ) आठों पहर सरसते रहते तुम मन सर-वरमें रसवान।

(१०)

हे प्राणप्रियतम! मेरा धन, परिवार तथा जीवन तुम्हीं हो; तुम्हीं मेरा शरीर और मन हो; तुम्हीं मेरे सम्पूर्ण धर्म हो। तुम्हीं मेरे समस्त सुखोंके सुन्दर आलय हो। तुम्हीं प्रिय निज-जन और तुम्हीं प्राणोंके मर्म—आधार हो॥ १॥

अधिक क्या कहूँ, तुम्हीं मेरी एकमात्र आवश्यकता हो और तुम्हीं उसकी एकमात्र पूर्त्ति हो। तुम्हीं मेरे लिये सब समय और सब प्रकारसे उपासना करनेयोग्य पवित्र और मधुर-मनोहर मूर्त्ति हो॥ २॥

तुम्हीं मेरे समस्त कार्य और घर हो और तुम्हीं मेरे एकमात्र महान् लक्ष्य हो। आठों पहर तुम मेरे मनरूपी मन्दिरमें भगवान्—इष्टदेवके रूपमें बसे रहते हो॥ ३॥

तुम मेरी समस्त इन्द्रियोंको नित्य पवित्रतम स्पर्शसुखका दान करते रहते हो। मेरे भीतर और बाहर तुम सदा अविराम अपनी मधुर तान छेड़ा करते हो॥ ४॥

तुम कभी मेरे नेत्रोंसे अदृश्य नहीं होते, एक पलकभर भी संयोगका त्याग नहीं करते और सदा घुले-मिले रहकर पवित्र रसका सम्भोग करते एवं करवाते रहते हो॥ ५॥

परंतु इसमें मेरा तुमसे भिन्न कभी कुछ दूसरा अभिप्राय नहीं रहता। मेरे समस्त संकल्प भङ्ग हो चुके हैं और अहंकार तथा ममताके वृक्ष जड़से कट गये हैं॥ ६॥

भोगनेवाले और भोगनेकी वस्तु—सब कुछ तुम्हीं हो और तुम्हीं स्वयं भोगकी क्रिया बने हो और मेरा मन बनकर तुम्हीं संयोग और वियोग—सभीका अनुभव किया करते हो॥ ७॥

(११)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।
अन्योंका उपभोग्य न भोक्ता है कदापि, यह सच्ची टेक॥ १॥

तन समीप रहता न स्थूलतः, पर जो मेरा सूक्ष्म शरीर।
क्षणभर भी न विलग रह पाता, हो उठता अत्यन्त अधीर॥ २॥

रहता सदा जुड़ा तुझसे ही, अतः बसा तेरे पद-प्रान्त।
तू ही उसकी एकमात्र जीवनकी जीवन है निर्भ्रान्त॥ ३॥

हुआ न होगा अन्य किसीका उसपर कभी तनिक अधिकार।
नहीं किसीको सुख देगा, लेगा न किसीसे किसी प्रकार॥ ४॥

यदि वह कभी किसीसे किंचित् दिखता करता-पाता प्यार।
वह सब तेरे ही रसका, बस, है केवल पवित्र विस्तार॥ ५॥

(११)

अहो प्राणप्यारी! मेरा शरीर और मन—सब तेरा ही है, तू ही मेरी सदा एकमात्र स्वामिनी है। मेरे ये शरीर और मन और किसीके किसी कालमें न तो उपभोग्य—भोगनेकी वस्तु हैं और न भोगनेवाले हैं, यह मेरी सच्ची टेक—प्रण है॥ १॥

मेरी देह स्थूलरूपसे तेरे समीप [सदा] नहीं रहती—यह सच है, परंतु मेरा जो यह सूक्ष्मशरीर है, वह एक क्षण भी तुझसे विलग नहीं रह सकता, [तेरे वियोगमें] अत्यन्त अधीर—विकल हो जाता है॥ २॥

यह सदा-सर्वदा तुझीसे जुड़ा रहता है और इसीसे तेरे चरणोंके समीप ही बसा रहता है। कारण, तू ही इसके जीवनकी एकमात्र जीवन—आधार है, इसमें कोई भ्रम नहीं॥ ३॥

उसपर किसी दूसरेका किसी कालमें रञ्चमात्र अधिकार न हुआ है और न होगा। न तो उसके द्वारा किसीको सुख मिलनेका और न उसको किसीसे किसी प्रकारका सुख मिल सकता है॥ ४॥

यदि किसी क्षण वह किसीसे रञ्चमात्र भी प्यार करता अथवा प्यार प्राप्त करता दीखे तो (समझ लेना चाहिये कि) वह सब एकमात्र तेरे ही रसका पवित्र विस्तार है और कुछ नहीं॥ ५॥

कह सकती तू मुझे सभी कुछ, मैं तो नित तेरे आधीन।
पर न मानना कभी अन्यथा, कभी न कहना निजको दीन॥ ६ ॥

इतनेपर भी मैं तेरे मनकी न कभी हूँ कर पाता।
अतः बना रहता हूँ सतत तुझको दुखका ही दाता॥ ७॥

अपनी ओर देख तू मेरे सब अपराधोंको जा भूल।
करती रह कृतार्थ मुझको, दे पावन पद-पङ्कजकी धूल॥ ८॥



तू मुझको यथारुचि सब कुछ (जो चाहे सो) कह सकती है, मैं तो सदा तेरे अधीन हूँ। परंतु मेरी इस बातको कभी अन्यथा मत मानना और न अपनेको किसी क्षण दीन कहना॥ ६॥

इतनेपर भी मैं तेरे मनकी कभी नहीं कर पाता। इसीसे मैं सदा तेरे लिये दुःखका ही कारण बना रहता हूँ॥ ७॥

परंतु मेरी तो तुझसे यह विनती है कि तू अपनी ओर देखकर मेरे समस्त अपराधोंको भूल जा और मुझको अपने चरण-कमलोंकी पावन धूल देकर कृतार्थ—निहाल करती रह॥ ८॥



(१२)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

तुमसे सदा लिया ही मैंने, लेती-लेती थकी नहीं।
अमित प्रेम-सौभाग्य मिला, पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं॥ १॥

मेरी त्रुटि, मेरे दोषोंको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी॥ २॥

तब भी कहते—'दे न सका मैं तुमको कुछ भी, हे प्यारी!
तुम-सी शील-गुणवती तुम ही, मैं तुम पर हूँ बलिहारी'॥ ३॥

क्या मैं कहूँ प्राणप्रियतमसे, देख लजाती अपनी ओर।
मेरी हर करनीमें ही तुम प्रेम देखते, नन्दकिशोर !॥ ४॥

~~~
~~~

(१२)

हे प्राणेश्वर! तुमसे मैंने सदा लिया-ही-लिया है, लेती-लेती मैं किसी क्षण थकी (अघायी) नहीं। तुमसे मुझको अपार प्रेम और सौभाग्य मिला, परंतु मैं तुमको कुछ भी नहीं दे सकी॥ १॥

मेरी त्रुटि अथवा दोष तुमने कभी नहीं देखे; तुम सदा ही देते रहे, देते-देते कभी थके-(अघाये) नहीं, अपना समस्त प्यार मुझपर उँड़ेल दिया॥ २॥

इसपर भी तुम कहते हो—'हे प्यारी! मैं तुझको कुछ भी नहीं दे सका। तुम्हारे-जैसी शील-स्वभाव और गुणोंसे युक्त नागरी एक तुम्हीं हो; मैं तुमपर बलिहारी—न्योछावर हूँ'॥ ३॥

मैं अपने प्राण-प्रियतम तुमसे क्या कहूँ; मैं अपनी ओर जब देखती हूँ तो लाजके मारे गड़ जाती हूँ। प्यारे नन्दकिशोर! (मैं क्या कहूँ) मेरी प्रत्येक करनीमें तुमको प्रेमके ही दर्शन होते हैं। (यह तुम्हारी प्रेममयी दृष्टिका चमत्कार है!)॥ ४॥



(१३)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग वागेश्री—तीन ताल)

राधे ! तू ही चित्तरञ्जनी, तू ही चेतनता मेरी।
तू ही नित्य आतमा मेरी, मैं हूँ, बस, आत्मा तेरी॥ १॥

तेरे जीवनसे जीवन है, तेरे प्राणोंसे हैं प्राण।
तू ही मन, मति, चक्षु, कर्ण, त्वक्, रसना, तू ही इन्द्रिय घ्राण॥ २॥

तू ही स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रियके विषय सभी मेरे सुखरूप।
तू ही मैं, मैं ही तू, बस, तेरा-मेरा सम्बन्ध अनूप॥ ३॥

तेरे बिना न मैं हूँ, मेरे बिना न तू रखती अस्तित्व।
अविनाभाव विलक्षण यह सम्बन्ध, यही, बस, जीवन-तत्त्व॥ ४॥



(१३)

प्यारी राधे! तू ही मेरे चित्तको रञ्जन करनेवाली है—(नहीं-नहीं) तू ही मेरी चेतनता है—तेरी ही सत्तासे मैं चेतन बना हुआ हूँ। तू ही मेरी सनातन आत्मा है और मैं तेरी आत्मा हूँ—इससे अधिक और क्या कहूँ॥ १॥

तेरे जीवनसे ही मेरा जीवन है और तेरे प्राणोंसे ही मेरे प्राणोंकी सत्ता है। मेरे मन, बुद्धि, नेत्र, कान, त्वचा, रसना और घ्राणेन्द्रिय (नासिका) तू ही है॥ २॥

मेरी स्थूल एवं सूक्ष्म इन्द्रियोंके सुखरूप विषय तू ही है। तू ही मैं है और मैं ही तू हूँ। बस, तेरा-मेरा सम्बन्ध उपमारहित—अद्वितीय है॥ ३॥

तेरे बिना मेरी कुछ हस्ती नहीं और मेरे बिना तेरा कुछ अस्तित्व नहीं। तेरा-मेरा यह अनोखा अविनाभाव सम्बन्ध है—मेरे बिना तू और तेरे बिना मैं नहीं रह सकता। बस, यही जीवनका तत्त्व—सार है॥ ४॥



(१४)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग वागेश्री—तीन ताल)

तुम अनन्त सौन्दर्य-सुधा-निधि, तुममें सब माधुर्य अनन्त।
तुम अनन्त ऐश्वर्य-महोदधि, तुममें सब शुचि शौर्य अनन्त॥ १॥

सकल दिव्य सद्गुण-सागर तुम लहराते सब ओर अनन्त।
सकल दिव्य रस निधि तुम अनुपम, पूर्ण रसिक, रसरूप अनन्त॥ २॥

इस प्रकार जो सभी गुणोंमें, रसमें अमित, असीम, अपार।
नहीं किसी गुण-रसकी उसे अपेक्षा कुछ भी, किसी प्रकार॥ ३॥

फिर, मैं तो गुणरहित सर्वथा, कुत्सित-गति सब भाँति, गँवार।
सुन्दरता-मधुरता-रहित, कर्कश, कुरूप, अति दोषागार॥ ४॥

नहीं वस्तु कुछ भी ऐसी, जिससे तुमको मैं दूँ रस-दान।
जिससे तुम्हें रिझाऊँ, जिससे करूँ तुम्हारा पूजन-मान॥ ५॥

एक वस्तु मुझमें अनन्य, आत्यन्तिक है विरहित उपमान।
'मुझे सदा प्रिय लगते तुम', यह तुच्छ किंतु अत्यन्त महान॥ ६॥

(१४)

हे प्राणप्यारे! तुम सौन्दर्यरूप सुधाकी अनन्त निधि हो, तुममें सब प्रकारका अनन्त माधुर्य भरा है। तुम ऐश्वर्यके भी अनन्त महासागर हो और तुम्हारे भीतर सब प्रकारकी पवित्र शूरवीरता भी अनन्त रूपमें भरी है॥ १॥

सम्पूर्ण दिव्य श्रेष्ठ गुणोंके अनन्त सागररूपमें तुम सब दिशाओंमें लहराया करते हो। तुम सम्पूर्ण अलौकिक रसोंकी अनुपम निधि हो एवं पूर्ण रसिक हो और अनन्त रसरूप हो॥ २॥

इस प्रकार जो सम्पूर्ण गुणोंमें तथा रसमें परिमाणरहित, सीमारहित और अपार हो, उसको किसी गुण अथवा रसकी किसी प्रकारसे तनिक भी अपेक्षा—चाह अथवा प्रयोजन नहीं हो सकता॥ ३॥

इसके विपरीत, मैं तो सब प्रकारसे गुणहीन, सब तरहसे बेढंगी एवं गँवारिन हूँ। सुन्दरता, मधुरताका मुझमें नाम-निशान भी नहीं। इतना ही नहीं, मैं कठोर स्वभावकी, अत्यन्त कुरूपा और दोषोंकी घर हूँ॥ ४॥

मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिससे मैं तुमको रस—आनन्द दे सकूँ, जिससे मैं तुमको रिझा सकूँ, जिससे मैं तुम्हारी पूजा कर सकूँ, तुम्हारा सम्मान कर सकूँ॥ ५॥

हाँ, एक ऐसी तुच्छ, परंतु अत्यन्त गौरवकी वस्तु मेरे पास अवश्य है, जो किसी दूसरेके पास नहीं, जिसका अन्त नहीं हो सकता और जिसकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। वह यह है कि 'तुम मुझको सदा प्यारे लगते हो'॥ ६॥

रीझ गये तुम इसी एकपर, किया मुझे तुमने स्वीकार।
दिया स्वयं आकर अपनेको, किया न कुछ भी सोच-विचार॥७॥

भूल उच्चता, भगवत्ता सब, सत्ताका सारा अधिकार।
मुझ नगण्यसे मिले तुच्छ बन, स्वयं छोड़ संकोच-सँभार॥८॥

मानो अति आतुर मिलनेको, मानो हो अत्यन्त अधीर।
तत्त्वरूपता भूल सभी, नेत्रोंसे लगे बहाने नीर॥९॥

हो व्याकुल, भर रस अगाध, आकर शुचि रस-सरिताके तीर।
करने लगे परम अवगाहन, तोड़ सभी मर्यादा धीर॥१०॥

बढ़ी अमित, उमड़ी रस-सरिता पावन, छायी चारों ओर।
डूबे सभी भेद उसमें, फिर रहा कहीं भी ओर न छोर॥११॥

प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद—नहीं ज्ञान कुछ, हुए विभोर।
राधा प्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर॥१२॥



इसी एक वस्तुपर तुम रीझ गये और तुमने मुझको अङ्गीकार कर लिया। इसीपर तुमने स्वयं पधारकर अपने-आपको मुझे दे दिया, कुछ भी सोच-विचार नहीं किया॥ ७॥

अपनी सम्पूर्ण महानता, भगवत्ता एवं सत्ताका समस्त अधिकार भूलकर और संकोचका बोझा उतारकर तथा परवाह छोड़कर स्वयं तुच्छ बनकर तुम मुझ नगण्य—नाचीजसे इस प्रकार मिले, मानो कोई मिलनेके लिये अत्यन्त आतुर—उतावला और अधीर हो। और तो और, तुम अपनी तत्त्वरूपता—वास्तविक सर्वरूपताको भूलकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे॥ ८-९॥

इतना ही नहीं, व्याकुल होकर अगाध रस भरकर तथा पवित्र रसकी सरिताके तीरपर आकर सब प्रकारकी मर्यादा एवं धीरजके बाँधको सर्वथा तोड़कर उस नदीमें तुम अत्यन्त गहरे गोते लगाने लगे॥ १०॥

उस समय रसकी वह पावन सरिता अपाररूपसे बढ़ गयी और उमड़कर चारों ओर छा गयी, व्याप्त हो गयी। सब प्रकारके भेदभाव उसकी गहराईमें डूब गये, विलीन हो गये और उस रससरिताका कहीं ओर-छोर नहीं रहा॥ ११॥

प्रेमी, प्रेम और परम प्रेमास्पदका भेद-ज्ञान तनिक भी नहीं रहा और तुम बेभान हो गये। उस समय तुमको यह भी ज्ञान नहीं रह गया कि 'केवल मैं तुम्हारी राधा प्यारी हूँ' अथवा 'मेरे प्रियतम तुम नन्दकिशोर ही हो' ('केवल मैं रह गयी हूँ या केवल तुम्हीं हो'—इस बातका भी भान नहीं रहा)॥ १२॥



(१५)

श्रीकृष्णके प्रेमोद्गार—श्रीराधाके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

राधा! तुम-सी तुम्हीं एक हो, नहीं कहीं भी उपमा और।
लहराता अत्यन्त सुधा-रस-सागर, जिसका ओर न छोर॥ १॥

मैं नित रहता डूबा उसमें, नहीं कभी ऊपर आता।
कभी तुम्हारी ही इच्छासे हूँ लहरोंमें लहराता॥ २॥

पर वे लहरें भी गाती हैं एक तुम्हारा रम्य महत्त्व।
उनका सब सौन्दर्य और माधुर्य तुम्हारा ही है स्वत्व॥ ३॥

तो भी उनके बाह्य रूपमें ही, बस, मैं हूँ लहराता।
केवल तुम्हें सुखी करनेको सहज कभी ऊपर आता॥ ४॥

एकच्छत्र स्वामिनि तुम मेरी अनुकम्पा अति बरसाती।
रखकर सदा मुझे संनिधिमें जीवनके क्षण सरसाती॥ ५॥

(१५)

प्यारी राधे! तुम्हारे-जैसी तो तुम एक ही हो और किसीमें भी तुम्हारी समता नहीं है। तुम्हारे भीतर सुधा-रसका अनन्त सागर लहराया करता है, जिसका कहीं ओर-छोर नहीं दीखता॥ १॥

उसमें मैं सदा डूबा रहता हूँ, कभी उतराता नहीं। किसी क्षण तुम्हारी इच्छासे ही (ऊपर आकर) तरङ्गोंमें लहराता रहता हूँ॥ २॥

परंतु वे तरङ्गें भी एक तुम्हारे ही परम रमणीय महत्त्वका गान किया करती हैं; उन लहरोंका समस्त सौन्दर्य तथा माधुर्य एकमात्र तुम्हारी ही सम्पत्ति—निजस्व है॥ ३॥

तो भी उनके बाह्यरूपमें ही मैं लहराता रहता हूँ, इससे अधिक मैं क्या कहूँ? केवल तुमको सुखी करनेके लिये ही किसी क्षण सहज रूपसे मैं उतराने लगता हूँ॥ ४॥

मेरी एकच्छत्र स्वामिनि! तुम मुझपर अपार दया बरसाती रहती हो और मुझको सदा अपने समीप रखकर जीवनके क्षणोंको सरस बनाती रहती हो॥ ५॥

अमित नेत्रसे गुण-दर्शन कर, सदा सराहा ही करती।
सदा बढ़ाती सुख अनुपम, उल्लास अमित उरमें भरती॥ ६॥

सदा, सदा मैं सदा तुम्हारा, नहीं कदा कोई भी अन्य—
कहीं जरा भी कर पाता अधिकार दासपर सदा अनन्य॥ ७॥

जैसे मुझे नचाओगी तुम, वैसे नित्य करूँगा नृत्य।
यही धर्म है, सहज प्रकृति यह, यही एक स्वाभाविक कृत्य॥ ८॥



अनन्त नेत्रोंसे मुझमें गुण देखकर सदा मुझको सराहा करती हो तथा नित्य मेरे उपमारहित सुखको बढ़ाती हुई हृदयमें अपार उल्लास भरती रहती हो॥ ६॥

मैं सदा, सदा, सदा तुम्हारा हूँ; तुम्हारे इस नित्य अनन्य दासपर कहीं कोई दूसरा कभी रञ्चमात्र भी अधिकार नहीं कर सकता॥ ७॥

जिस प्रकारसे मुझको तुम नचाओगी, मैं उसी प्रकारसे सदा नाचा करूँगा। यही मेरा धर्म है, यही मेरा सहज स्वभाव है और यही मेरा एकमात्र स्वाभाविक कर्म है॥ ८॥



(१६)

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णके प्रति

(राग भैरवी—तीन ताल)

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र; काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥ १॥

मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र; न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक; मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥ २॥

क्या करूँ, नहीं क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार।
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥ ३॥

अनबोल, नित्य निष्क्रिय, स्पन्दनसे रहित, सदा मैं निर्विकार।
तुम जब जो चाहो, करो, सदा, बेशर्त, न कोई भी करार॥ ४॥

मरना-जीना मेरा कैसा, कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही, प्रियतम! ये खेल नित्य सुखमय महान॥ ५॥

कर दिया क्रीड़नक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥ ६॥

इतना मैं जो यह बोल गयी, तुम जान रहे—है कहाँ कौन।
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से, मैं तो शून्य मौन॥ ७॥

~~~
~~~

(१६)

हे प्रियतम! तुम यन्त्री—यन्त्रके चालक हो, मैं यन्त्र हूँ; मैं काठकी पुतली हूँ, तुम सूत्रधार—पुतलीको नचानेवाले हो। तुम अपनी इच्छाके अनुसार मुझसे क्रिया करवाते तथा बुलवाते एवं अपने इशारेपर नचाते रहो॥ १॥

मैं नित्य जो कुछ करती, बोलती तथा नाचती हूँ, सब तुम्हारे अधीन रहकर ही; मेरे भीतर कोई अहंकार—अपनी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। मेरा मन सर्वथा मौन—क्रियाहीन हो गया है; नहीं-नहीं, मेरे मनकी अलग सत्ता ही नहीं रही—तुम्हारा मन ही मेरा मन बन रहा है। मैं तो अचिन्त्य (किसीकी धारणामें न आये, ऐसा) खिलौना हूँ, तुम्हीं उससे खेलनेवाले हो॥ २॥

मुझको क्या करना है और क्या नहीं करना है—इसपर मैं कैसे कुछ विचार करूँ। तुम ही स्वयं सोचकर, जिससे तुमको सुख हो, ऐसा तुमको प्यारा लगनेवाला विहार—तुम्हारी रुचिका खेल स्वच्छन्दतासे (किसी तरहका संकोच न करके) नित्य करते रहो॥ ३॥

मैं तो सदा बोलनेमें असमर्थ, क्रियाहीन, चेष्टाशून्य (हिलने-डुलनेमें भी अशक्त) तथा विकाररहित (प्रतिक्रियाशून्य) हूँ। तुम जिस क्षण, जो कुछ करना चाहो, वही सदा किया करो—मेरी ओरसे कोई शर्त अथवा करार नहीं है॥ ४॥

मेरे लिये मरना-जीना कैसा और कैसा मेरा मान-अपमान। अर्थात् मेरे लिये मरना-जीना और मान-अपमान भी कुछ अर्थ नहीं रखते। प्रियतम! ये सब तुम्हारे ही महान् सुखमय नित्यके खेल हैं॥ ५॥

तुमने अपने हाथका खिलौना बनाकर मुझको अत्यन्त निहाल कर दिया है। यह भी मैं कैसे मानूँ अथवा जानूँ? अपना हालचाल तुम ही जानो। (कारण, तुम्हीं सब कुछ करते-कराते हो)॥ ६॥

इतनी बात जो मैं कह गयी, वह भी तुम जानते हो कि कौन कहाँपर है, कौन बोल- बुलवा रहा है; सच बात तो यह है कि मुझमें स्वर भरकर तुम्हीं मुखरा-जैसे बनकर बोले हो। मैं तो वाचालतासे शून्य—मौन हूँ॥ ७॥

~~~
~~~

पुष्पिका

महाभाव-रसराजके मधुर मनोहर भाव।
दिव्य, मधुरतम, रागमय, दैन्य विभूषित चाव॥ १॥

दोनों दोनोंके लिये सहज सभी कर त्याग।
सुखद परस्पर बन रहे, छलक रहा अनुराग॥ २॥

दोनों दोनोंके सदा प्रेमी-प्रेष्ठ महान।
नित्य, अनन्त, अचिन्त्य, शुचि, अनिर्वाच्य रस खान॥ ३॥

सुख-दुख दोनों ही सुखद, प्रियतम-सुखके हेतु।
अन्य सभी टूटे सहज मिथ्या निजसुख-सेतु॥ ४॥

राधा-माधव-प्रेम-रस वाचा-चित्त-अतीत।
करते शाखाचन्द्र-से इङ्गित सोलह गीत॥ ५॥

श्रीराधाकृष्णचरणकमलेभ्योऽर्पितम्।



पुष्पिका

महाभावस्वरूपा श्रीराधा और मूर्त्तिमान् रसराज श्रीकृष्णके ये भाव (जो ऊपरके सोलह गीतोंमें व्यक्त हुए हैं) मधुर और मन हरण करनेवाले ही नहीं, ये अलौकिक, मधुरतम, प्रेमासक्तिमय और प्रेमके दीनतारूप गुणसे विभूषित हैं॥ १॥

दोनों ही एक-दूसरेके लिये सहज भावसे—अनायास सब कुछ त्यागकर एक-दूसरेको सुख पहुँचानेमें दत्तचित्त रहते हैं और दोनोंके हृदयमें अनुराग छलक रहा है॥ २॥

दोनों ही सदा दोनोंके—एक-दूसरेके महान् प्रेमी और महान् प्रेमास्पद हैं। दोनों ही उस दिव्य रसके अटूट स्रोत हैं, जो नित्य और अनन्त है—जिसका त्रिकालमें कभी अभाव और अन्त नहीं होता, चित्तके द्वारा जो चिन्तनमें नहीं आता, वाणीसे जिसका वर्णन नहीं हो सकता तथा जो सर्वथा पवित्र—काम-कलङ्कसे शून्य, त्यागमय है॥ ३॥

इनके प्रेम-राज्यमें सुख-दुःख नामकी दोनों अवस्थाएँ प्रेमास्पदके सुख-उल्लासकी हेतु होनेके कारण सुख देनेवाली हैं। इसमें आत्म-सुखकी कामना-रूप जितने भी झूठे बाँध थे, वे सब अपने-आप टूट चुके—नष्ट हो चुके हैं॥ ४॥

श्रीराधा एवं श्रीकृष्णका यह दिव्य प्रेम-रस वाणी तथा चित्तसे अतीत है। ऊपरके सोलह गीत इस रसका संकेतमात्र करते हैं—जैसे द्वितीयाके चन्द्रमाको दिखानेके लिये यह कहा जाता है कि वह अमुक वृक्षकी अमुक डालसे सटा हुआ है, यद्यपि चन्द्रमा वहाँसे लाखों कोस दूर है॥ ५॥



